

शिक्षा में नैतिकता : पतन एवं निदान

सारांश

पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से आज शिक्षा का उद्देश्य मात्र जीविकोपार्जन तक सिमट कर रह गया है। इसके दुष्परिणाम स्वरूप मनुष्य नैतिक रूप से पतन की ओर अग्रसर है। भ्रष्टाचार, आतंकवाद, बलात्कार, हत्या इत्यादि अनेक समस्याओं का मूल कारण नैतिकता का ह्रास है। हमारी प्राचीन शिक्षा प्रणाली में नैतिक मूल्यों द्वारा शिक्षा दी जाती थी। वर्तमान काल में भी चरित्र निर्माण के लिये शिक्षा में नैतिकता का अवलम्बन लेना होगा। वेदकालीन शिक्षा प्रणाली को अपनाकर बच्चों का सर्वांगीण विकास सम्भव है। लोक कथाओं, महान व्यक्तियों के जीवन चरित्र तथा भारत की सनातन परम्पराओं का अध्ययन समाज को नैतिकता के पतन से उबार सकता है।

मुख्य शब्द : नैतिकता, शुद्धाचरण, सर्वांगीण विकास, चरित्र निर्माण।

प्रस्तावना

मानवजाति के सर्वांगीण विकास के लिए शिक्षा एक अनिवार्य आवश्यकता है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में भौतिकता का विकास अपने चरमोत्कर्ष पर है। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से आज शिक्षा का उद्देश्य जीविकोपार्जन मात्र तक सिमटकर रह गया है। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि मनुष्य का नैतिक रूप से पतन हो रहा है। आज की ज्वलंत समस्याएँ इसी नैतिक पतन का परिणाम हैं यथा – भ्रष्टाचार, आतंकवाद, लूटमार एवं बलात्कार इत्यादि। भारतीय संस्कृति में शिक्षा का स्वरूप अत्यन्त व्यापक हैं। इसमें शिक्षा केवल अक्षरज्ञान का माध्यम ही नहीं है अपितु मनुष्य के विकास के प्रत्येक पक्ष का सामर्थ्य विद्यमान है। हमारी प्राचीन शिक्षा-प्रणाली में शिक्षा के उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं, जिनमें प्रमुख हैं— बुद्धि का विकास, अज्ञान को दूर करना, चिन्तन-क्षमता में वृद्धि, विश्वकल्याणी भावना का विकास, शुद्धाचरण, सुचरित्र निर्माण, ज्ञान और कर्म का समन्वय इत्यादि। वर्तमानकालीन शिक्षा प्रणाली में हमें इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए शिक्षा में नैतिकता पर बल दिया जाना चाहिए अन्यथा आधुनिक समाज आज जिस पतन की ओर अग्रसर हो रहा है उसका परिणाम निःसन्देह भयानक व अकल्पनीय है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य शिक्षा में नैतिकता की अनिवार्यता को शामिल करना है ताकि मनुष्य आत्मिक बल को पुनः प्राप्त करके वैदिक उद्घोष – “धियो योनः प्रचोदयात्”¹ के वास्तविक अर्थ को हृदयंगम करने में समर्थ हो सके। अग्रिम कतिपय पृष्ठों में नैतिकता किस प्रकार हमें पतन से रोकने में सफल हो सकती है और निदानस्वरूप कैसे सहायक सिद्ध हो सकती है, यही विचारणीय है।

नैतिकता का अर्थ एवं स्वरूप

किसी भी समाज के कुछ निर्धारित नियम होते हैं। जो व्यक्ति अपनी सामाजिक मान्यताओं के अनुसार व्यवहृत होता है वह नैतिक माना जाता है और जो उन नियमों का उल्लंघन करता है वह अनैतिक समझा जाता है। अलग-अलग समाजों के अलग-अलग नियम होते हैं, इसलिए नैतिक व्यवहार के किसी सार्वभौमिक मानदण्ड की स्थापना नहीं की जा सकती। फिर भी अनेक व्यवहार ऐसे हैं जिन्हें अधिकांश समाजों और संस्कृतियों में अवाञ्छनीय एवं अनैतिक समझा जाता है। जैसे— असत्य-भाषण, हिंसा एवं व्यभिचार इत्यादि। सामान्यतः नैतिकता वह मानसिक वृत्ति है जिसकी सहायता से कोई व्यक्ति अच्छे-बुरे, सच-झूठ, उचित-अनुचित के मध्य अन्तर कर सकता है। प्रारम्भ में बालक अपने परिवार, पड़ोस एवं वातावरण से नैतिक आचरण सीखता है। परिपक्व होने पर उसके भीतर विवेक का उदय होता है और वह उसके निर्देशानुसार नैतिक व्यवहार की ओर प्रवृत्त होता है। इस प्रकार जन्म के समय बालक का मन कोरी स्लेट की भाँति होता है। विकासक्रम में वह अपने परिवेश



अनीता नैन

सहायक प्रोफेसर,
संस्कृत विभाग,
सेठ बनारसी दास शिक्षण
महाविद्यालय,
कुरुक्षेत्र

से नैतिक अनैतिक बातें सीखता है। नैतिक व्यवहार का विकास बालक के सामाजिककरण का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य है। समुचित नैतिक विकास के लिए माता-पिता की अभिवृत्तियाँ, परिवार की सामाजिक-आर्थिक स्थिति एवं उपयुक्त वातावरण उत्तरदायी होता है। अतः नैतिक व्यवहार जन्मजात नहीं होता बल्कि वह सामाजिक परिवेश में अर्जित किया जाता है।²

नैतिक विकास में शिक्षा का योगदान

जिस प्रकार बालक अपने परिवार और समाज से नैतिकता ग्रहण करता है उसी प्रकार पाठशाला में शिक्षा के माध्यम से उसके व्यवहार में नैतिक मूल्यों का समावेश किया जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में मनोविज्ञान की सहायता से बालकों के नैतिक विकास पर बल दिया गया है। हेलेन बी ने बालक के नैतिक विकास के तीन पक्षों का उल्लेख किया है—

1. नैतिक व्यवहार
2. नैतिक भावना
3. नैतिक निर्णय

किसी परिस्थिति में कोई बालक सामाजिक नियमों और उचित-अनुचित का ध्यान रखते हुए जो आचरण प्रदर्शित करता है, उसे नैतिक व्यवहार कहा जाता है। नैतिक व्यवहार का स्वरूप विकास की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में बदलता रहता है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक स्किनर, सीयर्स, वैन्डूर तथा वाल्टर्स इत्यादि ने विभिन्न सामाजिक अधिगम सिद्धान्तों को विकसित करके बालकों के नैतिक व्यवहार को समझने में योगदान दिया है।³ कोहलबर्ग ने नैतिक विकास की छः अवस्थाओं का वर्णन किया है जिन्हें उन्होंने दो-दो अवस्थाओं को साथ-साथ रखते हुए तीन स्तरों में बाँट दिया है :- नैतिक विकास के निम्नलिखित हैं—

प्री-कन्वेंशनल स्तर

- क) आज्ञा एवं दण्ड की अवस्था
- ख) अहंकार की अवस्था

कन्वेंशनल स्तर

- ग) प्रशंसा की अवस्था
- घ) सामाजिक व्यवस्था के प्रति सम्मान

पोस्ट कन्वेंशनल स्तर

- ड) सामाजिक समझौता की अवस्था
- च) विवेक की अवस्था

इन सभी अवस्थाओं में बालक का नैतिक विकास क्रमशः होता है। मनोविज्ञान की इन अवधारणाओं को समझने के साथ-साथ बालकों के नैतिक विकास में भारतीय संस्कृति का प्रभाव भी स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है। इसके लिए शिक्षा प्रणाली के मूलभूत ढाँचे में परिवर्तन की आवश्यकता है। इसी दिशा में प्रयास के लिए कतिपय सुझाव निम्नलिखित हैं, जिनको अपनाकर बालकों का समग्र नैतिक विकास किया जा सकता है—

वेदकालीन शिक्षा प्रणाली का अध्ययन

वेदकालीन शिक्षा प्रणाली मनुष्य की आत्मिक उन्नति का मार्ग दिखाती है अतः कहा गया है—“सा विद्या या विमुक्तये” अर्थात् विद्या वही है जो मनाव को मुक्ति (मोक्ष) दिला सके। भारतीय वेद संसार के प्राचीनतम ग्रंथ हैं। सामान्यतः वेदों को धार्मिक ग्रन्थों के रूप में देखा

जाता है परन्तु वास्तव में वेद ज्ञानकोश हैं। इसमें आर्यों द्वारा खोजा एवं विकसित किया गया समस्त भौतिक एवं आध्यात्मिक ज्ञान सूत्र रूप में संग्रहीत है। वैदिक काल में भारत में एक समृद्ध शिक्षा प्रणाली का विकास हुआ जिसमें धर्म, दर्शन, शिल्प एवं चिकित्सा सम्बन्धी विषय सम्मिलित थे। इस काल में शिक्षा शब्द का प्रयोग ज्ञान, विद्या, विनय और अनुशासन के पर्याय के रूप में किया जाता था और इन रूपों में शिक्षा का व्यापक अर्थ परिलक्षित होता है। यदि उस समय के गुरुकुल के नियमों और दिनचर्या पर ध्यान दे तो स्पष्ट होगा कि उस समय विद्यार्थी के नैतिक एवं चारित्रिक विकास पर विशेष ध्यान दिया जाता था। शिक्षा का सर्वप्रमुख उद्देश्य ज्ञान का विकास एवं नैतिक और आध्यात्मिक उन्नति करना था।

चरित्र-निर्माण से तात्पर्य हैं—मनुष्य को धर्मसम्मत आचरण में प्रशिक्षित करना। वैदिक काल में बच्चों के नैतिक एवं चारित्रिक विकास के लिए उन्हें प्रारम्भ से ही धर्म और नीतिशास्त्र की शिक्षा दी जाती थी। उन्हें इन्द्रिय निग्रह, धर्मानुकूल आचरण और संध्यावन्दन आदि क्रियाओं में प्रशिक्षित किया जाता था। उस समय शिक्षा की मनोवैज्ञानिक शिक्षण विधियों का प्रयोग किया जाता था। यथा—प्रश्नोत्तर विधि, शंका—समाधान विधि, व्याख्यान और वाद—विवाद विधि इत्यादि। छोटे बच्चों की शिक्षा के लिए कहानी विधि तथा उच्च स्तर के शिष्यों के लिए तर्क विधि का प्रयोग किया जाता था। इससे प्रतीत होता है कि उस काल के गुरु मनोविज्ञान के ज्ञाता थे। इस सन्दर्भ में अथर्ववेद का सूत्र द्रष्टव्य है— ‘वाचस्पते देवन सह। वसोस्पते न रमयः।। अर्थात् गुरु शिष्य को दैवीय मन से पढ़ाए और इस प्रकार पढ़ाए कि उसमें रमणीयता रहे।⁴ उपनिषदों के अनुसार शिक्षा के तीन सोपान हैं⁵—

श्रवण

यह अध्ययन एवं निरीक्षण की अवस्था है जो शिक्षक द्वारा पाठ्य-वस्तु की व्याख्या सुनकर प्राप्त की जाती है।

मनन

इस अवस्था में आलोचनात्मक चिन्तन किया जाता है।

निदिध्यासन

यह वह अवस्था है जिसमें निरन्तर चिन्तन करते हुए सहज बुद्धि ज्ञान की अनुभूति की जा सकती है। इसमें यह स्पष्ट है कि मनन सबसे महत्वपूर्ण है। मनन के द्वारा ही अध्ययन किया जाता है जिससे चेतना जागृत होती है और ज्ञान की प्राप्ति होती है। तैत्तिरीयोपनिषद् में भी पढ़ने और पढ़ाने वाले के लिए अनेक नियम निश्चित किए गए हैं।⁶ यदि इन्हें आधुनिक शिक्षा प्रणाली में अपनाया जाए तो निःसन्देह उपयोगी सिद्ध होगा।

मनुस्मृति में भी विद्यार्थियों के लिए उपयोगी आचरण का निर्देश यत्र-तत्र प्राप्त होता है। इसमें कहा गया है कि विद्वान् और विद्यार्थियों को योग्य है कि वे बुद्धि छोड़कर सब मनुष्य के कल्याण के मार्ग का उपदेश करें। सदा मधुर सुशीलतायुक्त वाणी बोलें। सदा सत्य में चले और सत्य ही का उपदेश करें।⁷

वैदिक काल में बच्चे के गर्भकाल से लेकर उसकी पच्चीस वर्ष की आयु तक शिक्षा की पाठ्यचर्या पर

बल दिया गया है। जब बच्चा गर्भ में हो तब माता को सात्विक भोजन करना चाहिए। शुद्ध आचरण करते हुए धार्मिक कृत्यों में लीन रहना चाहिए।

यह वह काल है जब बच्चे के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य की नींव रखी जाती है। यदि नींव ही कमजोर रही तो फिर जीवनभर मनुष्य शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से दुर्बल रहेगा। इसके उपरान्त जन्म से लेकर युवावस्था तक भारतीय परम्परा का अनुसरण करते हुए ज्ञानप्राप्ति के लिए मार्गदर्शन करना ही शिक्षण है। इसमें आचरण, गुरु-सेवा, खेलकूद, व्यायाम, संगीत, विज्ञान आदि की शिक्षा दी जानी चाहिए।

चारित्रिक गुणों के विकास पर बल

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में ऐसी मूल्यनिर्धारित शिक्षा की आवश्यकता है जो बच्चों में चारित्रिक गुणों का विकास कर सके। इन गुणों के विकास के लिए शिक्षा प्रक्रिया में कतिपय परिवर्तन की आवश्यकता है। आज शिक्षा के क्षेत्र में नैतिक पतन एक प्रमुख समस्या है और इससे जुड़ी हुए अनेक समस्याएँ हैं। जैसे—अनुशासनहीनता, युवा-आक्रोश, हिंसात्मक व्यवहार इत्यादि। किसी भी समस्या को हल करने के लिए उसके कारणों का पता लगाना आवश्यक है। वर्तमान शिक्षा पद्धति के अवलोकन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि आज की शिक्षा व्यवसायिक एवं भौतिक संसाधनों की पूर्ति का माध्यम बनकर रह गई है जिसमें से नैतिकता लुप्त होती जा रही है। यदि हमें उपरोक्त समस्याओं का निदान करना है तो शिक्षा में नैतिकता का समावेश अनिवार्य रूप से करना होगा।

वैदिक काल में बच्चे के गर्भकाल से लेकर उसकी पच्चीस वर्ष की आयु तक शिक्षा की पाठ्यचर्या पर बल दिया गया है। जब बच्चा गर्भ में हो तब माता को सात्विक भोजन करना चाहिए। शुद्ध आचरण करते हुए धार्मिक कृत्यों में लीन रहना चाहिए।

यह वह काल है जब बच्चे के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य की नींव रखी जाती है। यदि नींव ही कमजोर रही तो फिर जीवनभर मनुष्य शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से दुर्बल रहेगा। इसके उपरान्त जन्म से लेकर युवावस्था तक भारतीय परम्परा का अनुसरण करते हुए ज्ञानप्राप्ति के लिए मार्गदर्शन करना ही शिक्षण है। इसमें आचरण, गुरु-सेवा, खेलकूद, व्यायाम, संगीत, विज्ञान आदि की शिक्षा दी जानी चाहिए।

नीतिपरक ग्रन्थों का पाठ्यक्रम में समावेश

शिक्षा में नैतिकता के उत्थान के लिए नीतिग्रन्थों को पाठ्यक्रम में शामिल किया जाना चाहिए। किसी भी देश का प्राचीन साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब होता है। हमारे देश का साहित्य नैतिकता का चरम आदर्श प्रस्तुत करता है। वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत, पंचतन्त्र, हितोपदेश, मनुस्मृति इत्यादि ग्रन्थ बालकों के नैतिक विकास के लिए

मार्गदर्शक सिद्ध हो सकते हैं। तर्कशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों से विद्यार्थी कुशाग्र बुद्धि बन सकता है। रामायण एवं महाभारत के पात्रों का चरित्र बच्चों के लिए उच्चतम आदर्श प्रस्तुत करते हैं जिन्हें वे अपने जीवन में आत्मसात् करके एक ओजस्वी व्यक्तित्व के स्वामी बन सकते हैं।

राम, सीता, युधिष्ठिर, द्रौपदी, श्रीकृष्ण, अर्जुन इत्यादि नायक-नायिकाओं के चरित्र का अवलोकन करने से त्याग, सहनशीलता, सत्य एवं वीरता जैसे चारित्रिक गुणों की पराकाष्ठा परिलक्षित होती है। अतः विद्यार्थियों को इनके अनुकरण से प्रेरणा प्राप्त हो सकती है। हमारे महान् दार्शनिक जगद्गुरु शंकराचार्य, महात्मा बुद्ध, महावीर स्वामी, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द इत्यादि के जीवन चरितों से भी विद्यार्थियों को आचरण की शुद्धता एवं मानसिक बल की निःसन्देह प्राप्ति होगी। इसी प्रकार पंचतन्त्र एवं हितोपदेश में वर्णित बाल-कथाएँ भी अवश्यरूपेण बालकों के चारित्रिक विकास में सहायक सिद्ध हो सकती हैं।

अध्यापक एवं शिष्यों का अनुशासित जीवन

अध्यापक के आदर्श आचार-व्यवहार का बालकों पर सीधा प्रभाव पड़ता है। सत्य तो यह है कि आचरण की शिक्षा आचरण द्वारा ही दी जा सकती है। आज हमारे देश में आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षक स्वयं आदर्श आचरण करें, तभी शिष्य आदर्श आचरण करेंगे। वैदिक काल में गुरु-शिष्यों के बीच बहुत मधुर सम्बन्ध होते थे। गुरु-शिष्यों की पूरी देखभाल करते थे और उनके सर्वांगीण विकास के लिए कठोर परिश्रम करते थे। गुरु शिष्यों के प्रति पूर्णतया समर्पित होते थे। आज के भौतिकतावादी युग में गुरु-शिष्य के आदर्श सम्बन्धों की पुनः आवश्यकता है। सत्य तो यह है कि जब तक गुरु शिष्यों के प्रति समर्पित नहीं होते, वे शिष्यों को कुछ नहीं सिखा सकते और जब तक शिष्यों की गुरुओं में श्रद्धा नहीं होते, वे उनसे कुछ भी नहीं सीख सकते। यदि आज के शिक्षक और शिक्षार्थी पूर्व की तरह एक-दूसरे के प्रति समर्पित हो जाएँ तो शिक्षा क्षेत्र की समस्त समस्याएँ हल हो सकती हैं।

मूल्य आधारित शिक्षा पर बल

शिक्षा क्षेत्र में नैतिकता की स्थापना के लिए शिक्षा के उद्देश्य एवं आदर्श निर्धारित किए जाने चाहिए। हमारे शिक्षाशास्त्रियों के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य बालक का सर्वांगीण विकास करना है। स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ टैगोर, महात्मा गांधी इत्यादि सभी विचारकों ने शिक्षा में चरित्र-निर्माण पर बल दिया। इन सभी के मतों में एक साम्य था कि सभी नैतिक व आध्यात्मिक उन्नति के पक्षधर रहे हैं। इसके लिए मूल्य आधारित शिक्षा की आवश्यकता है। भौतिकता की अंधी दौड़ में मनुष्य ने जीवनमूल्यों यथा-आदर्शवाद एवं नैतिकता को उपेक्षित कर दिया है। मनुष्य के नैतिक उत्थान के लिए मूल्यनिर्धारित शिक्षा पर बल दिया जाना चाहिए। यद्यपि इस दिशा में अनेक सराहनीय प्रयास किए गए हैं। इनमें कीरत जोशी की रिपोर्ट, 1964-66 में कोठारी ओयाग, 1986 ई० में राष्ट्रीय शिक्षा-नीति में मूल्य शिक्षा के सम्बन्ध में कुछ सुझाव दिए गए।¹ इनके अनुसार मूल्यशिक्षा के लिए समय-सारिणी में कुछ घण्टे निर्धारित किए जाने चाहिए। लोक-कथाओं, महान व्यक्तियों के बलिदान की गाथाएँ तथा भारत की सनातन परम्पराओं का अध्ययन होना चाहिए ताकि बालकों के जीवन पर इनका सकारात्मक प्रभाव पड़ सके। केवल मूल्य उन्मुख शिक्षा ही समाज में नैतिकता के गिरते स्तर को ऊपर

उठाने में समर्थ है। इससे बच्चों में सत्यता, सहिष्णुता विनम्रता, शिष्टता एवं परस्पर सौहार्द जैसे गुणों का विकास किया जा सकता है। प्रातः कालीन सभा में प्रार्थना, ध्यान एवं नैतिक भाषण को सम्मिलित किया जाना चाहिए।

निष्कर्ष

अन्त में यही कहना समीचीन होगा कि केवल विद्यालय अथवा पाठ्य-पुस्तकें ही नैतिकता के विकास के लिए पर्याप्त नहीं है अपितु अभिभावक, समाज, मित्र एवं शिक्षकगण भी इसके लिए उत्तरदायी हैं। इन सबका सम्मिलित प्रयास बालकों के सम्पूर्ण चारित्रिक विकास में सहयोगी सिद्ध हो सकता है। आज हम आधुनिक युग में निवास कर रहे हैं तथापि हमें अपने पूर्वजों की सभ्यता एवं संस्कृति पर गर्व है। आज सम्पूर्ण विश्व को प्रेम, सत्य, अहिंसा और त्याग जैसे गुणों की आवश्यकता है। अन्त में इस वैदिक उद्घोष के साथ मैं अपनी वाणी को विराम देना चाहूँगी।

“विश्वानि देव सविर्तदुरितानि परासुव। यद्भद्रं तन्न
आसुव।”

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. यजुर्वेद, 29/9
2. शिक्षा मनोविज्ञान, पी० डी० पाठक, (पृष्ठ संख्या 127-128)
3. भारत में शिक्षा का विकास, डॉ० ए० के० वर्मा, (पृष्ठ संख्या 293)
4. भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएँ, लाल एवं शर्मा, (पृष्ठ संख्या 25)
5. आत्मा वा अरे दृष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यश्च। वृहदारण्यकोपरिषद्, 245
6. ऋतं च स्वाध्याय प्रवचने च।सत्यं वद। धर्मं चर..
.....।। तैत्तिरीयोपनिषद्, 2.3-10
7. अहिंसैव भूतानां श्रेयोऽनुशासनम्। - मनुस्मृति, 3.1
8. शिक्षा दर्शन एवं पाश्चात्य तथा भारतीय शिक्षाशास्त्री (पृष्ठ संख्या 337)